JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue

JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)

An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

योगतत्वोपनिषद् में योग की अवधारणा एवं सिद्धान्त : एक विवेचनात्मक अध्ययन

डा0 असीम कुलश्रेश्ठ

Assistant Professor, Department of Yogic Science and Huamn consciouness, Dev Sanskriti Vishwavidyalaya, Shantikunj, Haridwar, Uttrakhand. Email- kools.dsvv@gmail.com

डा0 अनुजा रावत

Associate Professor and Head of the Dept., Department of Yoga and Naturopathy, H.N.B. Gharwal University, Shrinagar, Pauri Gharwal Uttrakhand

शोध – सार

उपनिषदों में योग का सम्प्रत्यय एवं सिद्धान्त का प्रतिपादन एवं वर्णन बहुत ही व्यापक एवं विस्तृत रूप से किया गया है। योग का मूल सिद्धान्त कुण्डलिनी जागरण, लयावस्था, राजयोग की प्राप्ति से सम्बन्धित है, इन्ही अवस्थाओं की प्राप्ति के लिये ही विभिन्न प्रकार की साधनात्मक विधियों का वर्णन विभिन्न यौगिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। योगतत्वोपनिषद उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें योग विषयक विविध उपादानों का विस्तृत वर्णन किया गया है। भगवान् विष्णु के द्वारा पितामह ब्रह्मा के लिए योग विषयक गूढ़ तत्त्वों के निरूपण के साथ उपनिषद् का शुभारम्भ हुआ है। कैवल्य रूपी परमपद की प्राप्ति के लिए योग मार्ग ही श्रेष्ठ साधन बताया गया है। मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग एवं राजयोग के क्रम में इनकी चार अवस्थाओं (आरम्भ, घट, परिचय एवं निष्पत्ति) का वर्णन हुआ है। योगी के आहार–विहार एवं दिनचर्या का उल्लेख किया गया है। इसी क्रम में योगसिद्धि के प्रारम्भिक लक्षणों का वर्णन तथा उससे सावधान रहने का निर्देश भी दिया गया है। पूर्ण मनोयोग से की गयी योग साधना निःसन्देह सफल होती है, जो योगी साधक को सभी सिद्धियों (अणिमा, गरिमा, महिमा आदि) से सम्पन्न कर देती है, वह ईष्वरीय शक्तियों का अधिकारी बन जाता है। अन्ततः वह आत्मतत्त्व का निर्वात दीपशिखा की तरह अन्तःकरण में साक्षात्कार करके आवागमन से मुक्त हो जाता है। इस उपनिषद् में योग की अवधारणा एवं सिद्धान्त को स्पश्ट करने का प्रयास इस षोध पत्र का उद्देष्य है।

कूटशब्द– कुण्डलिनी जागरण, लयावस्था, राजयोग, ईष्वरीय शक्ति, अन्तःकरण।

1. योगतत्वोपनिषद में योग की अवधारणा –

इस उपनिशद् में बन्धन एवं मुक्ति के साधन के रूप में अश्टांग योग का वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ वर्णन प्राप्त है कि, योगियों की हित–कामना की दृष्टि से मैं योगतत्त्व का वर्णन करता हूँ, जिसके श्रवण–अध्ययन तथा आचरण में धारण करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। पितामह ब्रह्माजी ने उन जगत् के स्वामी (भगवान् विष्णु) की आराधना एवं प्रणाम करके, कहा– हे जगन्नाथ! आप अष्टांग युक्त योग का उपदेश मुझे प्रदान करें। यह सुनकर उन भगवान् हृषीकेश ने कहा कि मैं उस तत्त्व का वर्णन करता हूँ, तुम ध्यानयुक्त हो कर श्रवण करो।[1] ये सभी जीव सुख–दुःख के माया रूपी जाल में आबद्ध हैं। वह निष्कल (कलारहित), मल रहित, शान्त, सर्वातीत (सबसे परे), निरामय (रोगरहित) तत्व जीव रूप में पुरुष और पाप के करों से पूर्ण हो जाता है।[2] जब वह परमात्मा सभी भाव और पद से परे, नित्य, ज्ञानरूप एवं मायारहित है, तब वह जीव भाव को कैसे प्राप्त हो जाता है। उस परमात्म तत्त्व में जल के सदृश स्फुरण हुआ और उसमें अहंकार की उत्पत्ति हुई। तब पंच महाभूत रूप, धातु से आबद्ध पिण्ड उत्पन्न हुआ। उस विशुद्ध परमात्मा ने सुख–दुःख से युक्त होकर जीव–भावना की, इससे उसे जीव नाम दिया गया।[3] काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ, मद, रजोगुण, जन्म–मृत्यु कार्पण्य (कंजूसी), शोक, तन्द्रा, सुधा, तृष्णा, भय दुःख विषाद, हर्ष आदि समस्त दोषों से मुक्ति मिल जाने पर जीव को 'केवल' (विशुद्ध) माना गया है।[4]

2. ज्ञान और योग का समन्वित अभ्यास –

अब उन दोषों को दूर करने का उपाय कहता हूँ। योग–विहीन ज्ञान मोक्ष देने वाला कैसे हो सकता है? ज्ञानरहित योग से भी मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। इस कारण मोक्ष के अभिलाषी को ज्ञान और योग दोनां का हो अभ्यास करना चाहिए।[5]

3. योग के भेद एवं अवस्थाऐं –

हे ब्रह्मन् व्यवहार की दृष्टि से योग के अनेकानेक भेद बताये गये हैं, जैसे– 1. मंत्रयोग, 2. लययोग, 3. हठयोग एवं 4. राजयोग आदि। योग की चार अवस्थाऐं सर्वत्र वर्णित की गई है। ये अवस्थायें– 1. आरम्भ, 2. घट, 3. परिचय एवं 4. निश्पत्ति हैं।[6]

3.1 मंत्रयोग –

इन चारों अवस्थाओं) के लक्षण संक्षेप में वर्णित किये जाते हैं– (मन्त्रयोग) जो मातृका आदि से युक्त मन्त्र की बारह वर्ष जप करता है, वह कमशः अणिमा आदि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है; परन्तु इस तरह का योग अल्प बुद्धि वाले लोग करते हैं तथा वे अधम कोटि के साधक होते हैं।[7]

3.2 लययोग –

चित्त का लय ही लययोग है, वह करोड़ों तरह का कहा गया है, चलते, बैठते, रुकते, शयन करते, भोजन करते, कलारहित परमात्मा का निरन्तर चिन्तन करता रहे। इस प्रकार वह तो लययोग हुआ।[8]

3.3 हठयोग –

अब हठयोग का श्रवण करो–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, भृकुटी के मध्य में श्रीहरि का ध्यान तथा समाधि –साम्यावस्था को अष्टांग योग कहते हैं।[9]

3.4 राजयोग की सिद्धि –

जो (योगी) 'अमरी' (मूत्र) को प्रतिदिन पीता है एवं घ्राणेन्द्रिय के द्वारा उसका नस्य करता (सूँघता) है तथा वज्रोली का अभ्यास करता है, तो उसे अमरोली का साधक कहा जाता है। इसके पश्चात् वह राजयोग सिद्ध करने में समर्थ हो जाता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। राजयोग के सिद्ध हो जाने से योगी को हठयोग की शरीर सम्बन्धी क्रियाओं की जरूरत नहीं पड़ती। उसे निश्चय ही वैराग्य एवं विवेक की प्राप्ति सहजतया हो जाती है। भगवान् विष्णु ही महायोगी, महाभूत स्वरूप तथा महान् तपस्वी हैं।[10]

4. मुद्रा एवं बन्धों का वर्णन –

मुद्राओं का विस्तृत वर्णन इस उपनिषद् में किया गया है, यहाँ वर्णित मुद्राओं को हम इसप्रकार स्पष्ट कर सकते है – महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध और खेचरी मुद्रा, जालन्धर बन्ध, उड्डियान बन्ध, मूलबन्ध, दीर्घ प्रणव संधान, परम सिद्धान्त का सुनना तथा वज्रोली, अमरोली एवं सहजोलो ये तीन मुद्रायें हैं। इसप्रकार यहाँ छः मुद्राऐं महामुद्रा, महावेध और खेचरी मुद्रा, वज्रोली, अमरोली एवं सहजोली, चार बन्ध महाबन्ध, जालन्धर बन्ध, उड्डियान बन्ध, मूलबन्ध के अतिरिक्त दीर्घ प्रणव संधान, परम सिद्धान्त का सुनने जैसे सिद्धान्तों का भी वर्णन किया गया है।[11]

5. यम–नियम एवं आसन का स्वरूप –

एक–एक यम एवं नियम का वर्णन प्राप्त होता है तथा 4 आसनों का वर्णन इस उपनिशद् के अन्तर्गत किया गया है। हे ब्रह्मन् ! अब आप इनमें से प्रत्येक के लक्षणों को सुनें यमों में एक मात्र सूक्ष्म आहार ही प्रमुख है। तथा नियमों के अन्तर्गत अहिंसा प्रधान है। 1. सिद्ध, 2. पद्म, 3. सिंह तथा 4. भद्र ये चार मुख्य आसन हैं।[12]

6. साधना में बाधाओं का स्वरूप –

साधना मार्ग में आने वाली बाधाओं को हम इसप्रकार समझ सकते हैं – हे चतुरानन! सर्वप्रथम अभ्यास के प्रारम्भिक काल में ही विघ्न उपस्थित होते हैं, जैसे आलस्य, अपनी बड़ाई, धूर्तताओं के वार्तालाप में रूचि तथा मन्त्रादिक का साधन। श्रेष्ठ, बुद्धिमान् साधक को धातु (रुपया आदि धन), स्त्री, लौल्यता (चंचलता) आदि को मृगतृष्णा रूप समझकर तथा विघ्न रूप जानकर त्याग देना चाहिए।[13]

7. प्राणायाम अभ्यास हेतु कुटि का स्वरूप –

प्राणायाम के अभ्यास के लिये कुटि के स्वरूप का वर्णन इस उपनिषद् में प्राप्त होता है। इसके विस्तृत स्वरूप को हम इसप्रकार स्पष्ट कर सकते हैं – तदनन्तर उस श्रेष्ठ साधक को पद्मासन लगाकर प्राणायाम का अभ्यास

करना चाहिए। इसके लिए सबसे पहले एक छोटी–सी पर्णकुटी छोटे द्वार से गुरु तथा बिना छिद्र वाली विनिर्मित करे। तत्पश्चात् उस कुटी को गाय के गोबर से लीपकर शोभनीय बनाये तथा ठीक तरह से स्वच्छ करे और प्रयत्नपूर्वक खटमल मच्छर, मकड़ी आदि जीवों से रहित करे। प्रतिदिन उस (कुटिया) को झाड़–मुहार करके स्वच्छ करता रहे एवं साथ हो उसे भूप, गूगल आदि की धूनी देकर सुवासित भी करता रहे। जो न तो बहुत अधिक ऊँचा तथा न ही अति नीचा हो, ऐसे वस्त्र, मृगचर्म या कुश के आसन पर बैठकर पद्मासन लगाना चाहिए।[14]

8. प्राणायाम की विधि –

प्राणायाम के अभ्यास की विधि एवं स्वरूप का वर्णन इस उपनिषद् में प्राप्त होता है। इसके विस्तृत स्वरूप का हम इसप्रकार स्पष्ट कर सकते हैं – शरीर को सीधा रखकर, हाथ जोड़ते हुए इष्ट देवता को प्रणाम करें, तत्पश्चात् दायें हाथ के अंगूठे से पिंगला को दबाकर शनैः–शनैः वायु को भीतर की ओर खींचे तथा उसे यथा शक्ति रोककर कुम्भक करे। तत्पश्चात् पिंगला द्वारा उस वायु को सामान्य गति से बाहर निकाल देना चाहिए। इसके बाद पिंगला से वायु को पेट में पुनः भर कर, शक्ति के अनुसार ग्रहण करके रेचक करे। इस प्रकार जिस तरफ के नथुने से वायु बाहर निकाले, उसी तरफ से पुनः भरकर दूसरे नथुने से बाहर निकालता रहें। न तो अत्यन्त द्रुतगति से और न ही अत्यन्त धीमी गति से, वरन् सहज–सामान्य गति से जानु की प्रदक्षिणा करके एक चुटकी बजाए, इतने समय को एक मात्रा कहा जाता है। सर्वप्रथम 'इड़ा' में सोलह मात्रा तक वायु को खींचे, तत्पश्चात् चौसठ मात्रा तक कुम्भक करे और तब इसके बाद बत्तीस मात्रा तक 'पिंगला' नाड़ी से रेचक करे। इसके बाद दूसरी बार 'पिंगला' से वायु खींचकर पहले की भाँति ही सारी क्रिया सम्पन्न करें। प्रातः, मध्याह्न, सायंकाल एवं अर्द्धरात्रि के समय चार बार धीरे–धीरे क्रमशः अस्सी कुम्भक तक का अभ्यास बढ़ाना चाहिए। इस तरह से तीन मास तक अभ्यास करने से नाड़ी शोधन हो जाता है। ऐसी शुद्धि होने से उस (श्रेष्ठ साधक) के चिह्न भी योगी की देह में दृष्टिगोचर होने लगते हैं।[15]

9. निषिद्ध एवं मित आहार –

निषिद्ध एवं मित आहार के स्वरूप को हम इसप्रकार स्पष्ट कर सकते हैं – वे चिह्न ऐसे हैं कि शरीर में हल्कापन मालूम पड़ता है, जठराग्नि तीव्र हो जाती है, शरीर भी निश्चित रूप से कृश हो जाता है। ऐसे समय में योग में बाधा पहुँचाने वाले आहार का परित्याग कर देना चाहिए।नमक, तेल, खटाई, गर्म, रूखा, तीक्ष्ण भोजन, हरे साग, हींग आदि मसाले, आग से तापना, स्त्री प्रसंग अधिक चलना, प्रातः काल का स्नान, उपवास तथा अपने शरीर को पीड़ा पहुंचाने वाले अन्य कार्यों को प्रायः त्याग ही देना चाहिए। अभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था में दुग्ध, घृत का भोजन ही सर्वश्रेष्ठ है। गेहूँ, मूंग एवं चावल का भोजन योग में वृद्धि प्रदान करने वाला बतलाया गया है। इस प्रकार अभ्यास करने से वायु की इच्छानुसार धारण करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।[16]

10. केवल कुम्भक अभ्यास सिद्धि के क्रमिक लक्षण (आरम्भ अवस्था) –

केवल कुम्भक के प्रारम्भिक अभ्यास से साधक के षरीर पर पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन हम इसप्रकार स्पश्ट कर सकते हैं – केवल कुम्भक के अभ्यास से फिर उस (श्रेष्ठ) योगी के लिए तीनों लोकों में कभी कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। अभ्यास के समय जो पसीना निकले, उसे अपने शरीर में ही मल लेना चाहिए। इसके अनन्तर वायु को धारणा शक्ति निरन्तर शनैः–शनैः बढ़ती रहने से आसन पर बैठे हुए साधक के शरीर में कम्पन होने लगता है। इससे आगे और अधिक अभ्यास होने पर मेढ़क की तरह चेष्टा होने लगती है। जिस तरह से मेढक उछलकर फिर जमीन पर आ जाता है, उसी तरह की स्थिति पद्मासन पर बैठे योगी की हो जाती है। जब इससे भी अधिक बढ़ता है, तो फिर वह योगी जमीन से ऊपर उठने लगता है। पद्मासन पर बैठा हुआ योगी अत्यन्त अभ्यास के कारण भूमि से ऊपर ही उठा रहता है। वह इस तरह और भी अतिमानुषी चेष्टाएँ निरन्तर करने लगता है।[17]

11. सतर्कता के साथ केवल कुम्भक के अभ्यास से क्रमिक मनोदैहिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव –

केवल कुम्भक के सतत् अभ्यास से साधक साधना की उच्च अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन हम इसप्रकार स्पश्ट कर सकते हैं – योगी को इस प्रकार की शक्ति एवं सामर्थ्य का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए, वरन् स्वयं ही देखकर अपना उत्साहवर्द्धन करना चाहिए। तब थोड़ा या बहुत कष्ट भी योगी को पोड़ा नहीं पहुँचा सकता। योगी का मल–मूत्र अति न्यून हो जाता है तथा निद्रा भी घट जाती है। कीचड़, नाक, थूक, पसीना, मुख की दुर्गन्ध आदि योगी को नहीं होती तथा निरन्तर अभ्यास बढ़ाने से उसे बहुत बड़ी शक्ति मिल जाती है। इस प्रकार से योगी को भूचर सिद्धि की प्राप्ति होने से समस्त भू–चरों पर विजय को प्राप्ति हो जाती है। व्याघ्र, शरभ, हाथी, गवय (नीलगाय), सिंह आदि योगी के हाथ मारने मात्र से हो मत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। उस योगी का स्वरूप भो कामदेव के सदृश सुन्दर हो जाता है। उस योगी के रूप का अवलोकन कर अनेकानेक स्त्रियाँ आकृष्ट होकर उससे भोग को इच्छा करने लगती हैं, लेकिन यदि योगी उनकी इच्छा की पूर्ति करेगा, तो उसका वीर्य नष्ट हो जायेगा। अतः स्त्रियों का चिन्तन न करके दृढ़ निश्चयी होकर, निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिए। वीर्य को धारण करने से योगी के शरीर से सुगन्ध आने लगती है।[18]

12. प्रणव जप के लाभ –

तदनन्तर एकान्त स्थल पर बैठकर प्लुत मात्रा (तीन मात्रा) से युक्त प्रणव (ॐकार) का जप करते रहना चाहिए, जिससे पूर्व जन्मों के पापों का विनाश हो जाए। यह ओंकार मत्र सभी तरह के विघ्न–बाधाओं एवं दोषों का हरण करने वाला है। इसका निरन्तर अभ्यास करते रहने से सिद्धियाँ हस्तगत होने लगती हैं।[19]

13. घटावस्था एवं वायु धारण –

केवल कुम्भक के सतत् अभ्यास से साधक साधना की उच्च अवस्था को प्राप्त करने के पष्चात घटावस्था में पड़ने वाले प्रभाव का वर्णन हम इसप्रकार स्पश्ट कर सकते हैं – इसके पश्चात् वायु–धारण का अभ्यास करना चाहिए। इस क्रिया से घटावस्था की प्राप्ति सहज रूप से होने लगती है। जिस अभ्यास में प्राण, अपान, मन, बुद्धि, जीव तथा परमात्मा में जो पारस्परिक निर्विरोध एकता स्थापित होती है, उसे घटावस्था कहा गया है।[20]

14. प्रत्याहार का स्वरूप –

प्रत्याहार के स्वरूप को हम इसप्रकार स्पश्ट कर सकते हैं – पूर्व में जितना अभ्यास योगी करता था, उसका चतुर्थ भाग ही अब करे। दिन अथवा रात्रि में मात्र एक प्रहर ही अभ्यास करना चाहिए। दिन में एक बार ही 'केवल कुम्भक' करे एवं कुम्भक में स्थिर होकर इन्द्रियों को उनके विषयों से खींचकर लाये, यही प्रत्याहार होता है। उस समय आँखों से जो कुछ भी देखें, उसे आत्मवत् समझे।[21]

जो भी कुछ कर्णेन्द्रिय से श्रवण करे तथा जो कुछ भी नासिका के द्वारा सूंघे, उस सभी को आत्म– भावना से ही स्वीकार करे। जिह्वा के माध्यम से जो भी कुछ रस ग्रहण करे, उसको भी आत्मरूप जाने। त्वचा से जो कुछ भी स्पर्श हो, उसमें भी अपनी आत्मा की ही भावना करे। इसी तरह से ज्ञानेन्द्रियों के जितने भी विषय हं, उन सबको योगी अपनी अन्तरात्मा में धारण करे तथा प्रतिदिन एक प्रहर तक इस (क्रिया) का आलस्य त्यागकर प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करे।[22]

15. अतीन्द्रिय क्षमताओं का जागरण –

साधना की उच्च अवस्था को प्राप्त कर साधक विभिन्न अतीन्द्रिय क्षमताओं को प्राप्त करता है, इन अतीन्द्रिय क्षमताओं को हम इसप्रकार स्पश्ट कर सकते हैं – इस प्रकार के अभ्यास द्वारा जैसे–जैसे योगी को चित्त–शक्ति बढ़ती है, वैसे–वैसे ही उसको दूर– श्रवण, दूर–दर्शन, क्षण भर में सुदूर क्षेत्र से आ जाना, वाणी की सिद्धि, जब चाहे जैसा रूप ग्रहण कर लेना, अदृश्य हो जाना, उसके मल–मूत्र के स्पर्श से लोहे का स्वर्ण में परिवर्तन हो जाना, आकाश मार्ग से गमन कर सकना आदि सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं। बुद्धिमान् श्रेष्ठ योगी सदैव योग की सिद्धि की ओर ही ध्यान बनाये रखे। (परन्तु) ये सभी सिद्धियाँ योग–सिद्धि के लिए विघ्नरूप हैं, बुद्धिमान् योगी साधक को इन (सिद्धियों) से बचना चाहिए। अपनी इस तरह की सामर्थ्य को कभी भी किसो के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिए। इसलिए श्रेष्ठ योगी को जन सामान्य के समक्ष अज्ञानी, मूर्ख एवं बधिर की भाँति बनकर रहना चाहिए। अपनी सामर्थ्य को सभी तरह से छिपाकर गुप्त रीति से रहना चाहिए। इस प्रकार लगातार योग के अभ्यास से उसे घटावस्था की प्राप्ति हो जाती है; परन्तु इस तरह की सिद्धि अभ्यास के द्वारा ही मिल सकती है, केवल बातों से कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता।[23]

16. धारणा का स्वरूप –

योग साधना के अन्तर्गत धारणा का महत्वपूर्ण स्थान है, धारणा के स्वरूप का वर्णन इस उपनिषद् में प्राप्त होता है। धारणा के स्वरूप को हम इसप्रकार समझ सकते हैं – इस प्रकार विशेष लक्षणों से संयुक्त योगी को पाँच तरह की धारणा करनी चाहिए। इस धारणा से उस योगी का शरीर अत्यन्त दृढ़ हो जाता है तथा उसे मृत्यु का भय भी व्याप्त नहीं होता। समस्त धारणाओं का वर्णन तक के श्लोकों में प्राप्त होता है। इनका वर्णन निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है– स्वर्ण के समान रंग से युक्त चार भुजाऐं एवं चतुर्भुज ब्रह्मा जी का ध्यान, चतुर्भुज मुकुट धारण किये हुए, पवित्र स्फटिक के समान, पीत वस्त्रों से आच्छादित अच्युतदेव श्री नारायण ब्रह्मा जी का ध्यान, त्रियक्ष से युक्त वर प्रदान करने वाले, तरूण आदित्य से सदृश प्रकाशमान तथा समस्त अंगों में भस्म धारण किये हुये भगवान रूद्र का प्रसन्न मन से ध्यान, विश्वतोमुख सर्वज्ञ ईश्वर का सतत चिन्तन, भगवान षंकर, बिन्दुरूप महादेव, वे भगवान् शिव सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण किये हुए, विभिन्न प्रकार के आभूषणों से विभूषित, पार्वती जी से सुशोभित अर्धाङ्ग वाले, वर प्रदान करने वाले तथा सभी कारणों के भी कारण रूप हैं।[24]

17. सगुण एवं निर्गुण ध्यान –

ध्यान समस्त यौगिक प्रक्रियाओं का आधारभूत अभ्यास है, ध्यान के सम्बन्ध में इस उपनिशद् में सगुण एवं निर्गुण ध्यान का विषद् वर्णन प्राप्त होता है। ध्यान के स्वरूप को हम इसप्रकार स्पश्ट कर सकते हैं – ब्रह्म–प्रलय अर्थात् चराचर में जल ही जल की स्थिति होने पर भी वह महामति दुःख को प्राप्त नहीं होता। छः घटी अर्थात् दो घंटे चौबीस मिनट तक वायु को रोककर आकाश तत्त्व में इष्ट सिद्धिदाता देवों का निरन्तर ध्यान करते रहना चाहिए। सगुण ध्यान करने से अणिमा आदि सिद्धियां प्राप्त होती हैं तथा निर्गुण रूप में चिन्तन करने से समाधि की स्थिति प्राप्त होती है।[25]

18. समाधि प्राप्ति समय एवं व्याख्या –

समाधि यौगिक प्रक्रियाओं का मूल उद्देष्य एवं लक्ष्य है, इस उपनिशद् में समाधि का विषद् वर्णन प्राप्त होता है। समाधि के स्वरूप को हम इसप्रकार स्पश्ट कर सकते हैं – योग में निष्णात साधक मात्र बारह दिन में ही समाधि की सिद्धावस्था को प्राप्त कर लेता है। वह योगी वायु (प्राण) को स्थिर करके (समाधि को सिद्ध करके) अपने जीवन में मुक्ति प्राप्त कर लेता है। समाधि में जीवात्मा एवं परमात्मा की समान अवस्था हो जाती है। उसमें यदि अपना शरीर छोड़ने की इच्छा हो, तो उसका परित्याग भी किया जा सकता है। इस प्रकार से योगी अपने आपको परब्रह्म में विलीन कर लेता है, उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता; किन्तु यदि उसको शरीर प्रिय लगता ह, तो वह स्वयं ही अपने शरीर में स्थित होकर अणिमा आदि समस्त सिद्धियों से युक्त हो सभी लोकों में गमन कर सकता है तथा यदि चाहे तो कभी भी देवता होकर स्वर्ग में निवास कर सकता है।[26]

19. अ, उ, म कार का महत्व एवं मुक्तावस्था –

अ, उ, म कार के स्वरूप के महत्व का वर्णन एवं इसके प्रभाव को वर्णन कर मुक्तावस्था का वर्णन प्राप्त होता है। इनके महत्व एवं स्वरूप को हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं – सभी कुछ उसी (तीन अक्षरों) में पिरोया हुआ है, वही सत्यस्वरूप है, वही शाश्वत परमपद है। जैसे– पुष्प में सुगन्ध होती है, दुग्ध में घृत सन्निहित है, तिलों में तेल उत्पन्न होता है और प्रस्तर खण्ड में स्वर्ण निहित है, वैसे ही वह भी सभी में व्याप्त है। हृदय संस्थान में जो कमल–पुष्प स्थित है, उसका मुख नीचे की ओर है। एवं उसकी नाल (दण्डी) ऊर्ध्व की ओर है। नीचे बिन्दु है, उसी के मध्य में मन प्रतिष्ठित है। 'अ' कार में रेचित किया हुआ हृदय कमल का 'उ' कार से भेदन किया जाता है एवं 'म' कार में नाद (ध्वनि) को प्राप्त होता है। अर्द्ध मात्रा निश्चल, शुद्ध स्फटिक के समान निष्कल एवं पापनाशक है।[27]

20.1 मुक्तावस्था का वर्णन –

इस प्रकार योग से संयुक्त हुआ योगी पुरुष मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है। जिस तरह से कच्छप अपने हाथ, पैर एवं सिर को अपने अन्दर प्रतिष्ठित कर लेता है, उसी तरह से सभी द्वारों से भर करके दबाया हुआ वायु, नौ द्वारों के बन्द होने से ऊर्ध्व की ओर गमन कर जाता है। जिस तरह वायुरहित घड़े के मध्य में (स्थिर ली वाला) दीपक रखा होता है, उसी तरह से कुम्भक जानना चाहिए। इस योग–साधना में नौ द्वारों के अवरुद्ध किये जाने पर सुनसान एवं निरुपद्रव स्थान में आत्मतत्त्व ही मात्र शेष रहता है। ऐसा ही यह योगतत्त्व उपनिषद् है।[28]

उपरोक्त वर्णन से यह स्पश्ट होता है कि योगतत्वोपनिषद् मेंयोग के प्रमुख ग्रन्थों की भॉति विभिन्न प्रकार की साधनाओं का वर्णन प्राप्त होता है। योग के ग्रन्थों की भॉति यहॉ भी ज्ञानप्राप्ति के उपायभूत योग, कर्मयोग ज्ञानयोग, निर्विशेषज्ञान की प्राप्ति के उपायभूत साधनों को योग के सिद्धान्तों की साम्यता के रूप में वर्णित किया है। यम–नियम, आसन, तथा प्राणायाम, धारणा, ध्यान और उसका फल के रूप में आत्मतत्व की प्राप्ति और उसके द्वारा मुक्ति प्राप्ति का विशद वर्णन किया गया है।

सन्दर्भ सूची –

---

1 तमाराध्य जगन्नाथं प्रणिपत्य पितामहः। पप्रच्छ योगतत्त्वं मे ब्रूहि चाष्टाङ्गसंयुतम्। योग. तत्वो. (3) तमुवाच हृषीकेशो वक्ष्यामि श्रृणु तत्त्वतः। सर्वे जीवाः सुखैर्दुःखैर्मायाजालेन वेष्टिताः। योग. तत्वो. (4)

2 निष्कलं निर्मलं शान्तं सर्वातीतं निरामयम्। तदेव जीवरूपेण पुण्यपापफलैर्वृतम्। योग. तत्वो. (8) परमात्मपदं नित्यं तत्कथं जीवतां गतम्। सर्वभावपदातीतं ज्ञानरूपं निरंजनम्। योग. तत्वो. (9) वारिवत्स्फुरितं तस्मिंस्तत्राहंकृतिरुत्थिता। पञ्चात्मकमभूत्पिण्डं धातुबद्धं गुणात्मकम्। योग. तत्वो. (10)

3 सुखदुःखैः समायुक्तं जीवभावना कुरु। तेन जीवाभिधा प्रोक्ता विशुद्धैः परमात्मनि। योग. तत्वो. (11)

4 कामक्रोधभयं चापि मोहलोभपदो रजः। जन्म मृत्युश्च कार्पण्यं शोकस्तन्द्रा क्षुधा तृशा। योग. तत्वो. (12) तृष्णा लज्जा भयं दुःखं विषादो हर्ष एव च। एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तः स जीवः केवलो मतः। योग. तत्वो. (13)

5 तस्माद्दोषविनाशार्थमुपायं कथयामि ते। योगहीनं कथं ज्ञानं मोक्षदं भवति ध्रुवम्। योग. तत्वो. (14) योगी हि ज्ञानहीनस्तु न क्षमो मोक्षकर्मणि। तस्माज्ज्ञानं च योगं च मुमुक्षुर्दृढमभ्यसेत्। योग. तत्वो. (15)

6 आरम्भश्च घटश्चौव तथा परिचयः स्मृतः। निष्पत्तिश्चेत्यवस्था च सर्वत्र परिकीर्तिता। योग. तत्वो. (20)

7 एतेषां लक्षणं ब्रह्मन्वक्ष्ये श्रृणु समासतः। मातृकादियुतं भवं द्वादशाब्दं तु यो जपेत्। योग. तत्वो. (21) क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादिगुणान्वितम्। अल्पबुद्धिरिमं योगं सेवते साधकाधमः। योग. तत्वो. (22)

8 लययोगश्चित्तलयः कोटिशः परिकीर्तितः। गच्छंस्तिष्ठन्स्वपन्भुञ्जन्ध्यायेन्निष्कलमीश्वरम्। योग. तत्वो. (23) स एवं लययोगः। योग. तत्वो. (24)

9 स्याद्धयोगमतः श्रृणु। यमश्च नियमश्चैव आसनं प्राणसंयमः। योग. तत्वो. (24) प्रत्याहारो धारणा च ध्यानं भ्रूमध्यमे हरिम्। समाधिः समतावस्था साष्टांगो योग उच्यते। योग. तत्वो. (25)

10 अमरीं यः पिबेन्नित्यं नस्यं कुर्वन्दिने दिने। वज्रोलीमभ्यसेन्नित्यममरोलीति कथ्यते। योग. तत्वो. (128) तो भवेद्राजयोगो नान्तरा भवति ध्रुवम्। यदा तु राजयोगेन निष्पन्ना योगिभिः क्रियाः। योग. तत्वो. (129) विवेकवैराग्यं जायते योगिनो ध्रुवम्। विष्णुनांम महायोगी महाभूतो महातपाः। योग. तत्वो. (130)

11 महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी। जालंधरोड्डियाणश्च मूलबन्धस्तथैव च। योग. तत्वो. (26) दीर्घप्रणवसंधानं सिद्धान्तश्रवणं परम्। वज्रोली चामरोली च सहजोली त्रिधा मता। योग. तत्वो. (27)

12 एतेषां लक्षणं ब्रह्मन्प्रत्येकं श्रृणु तत्त्वतः। लघ्वाहारो यमेष्वेको मुख्यो भवति नेतरः। योग. तत्वो. (28) अहिंसा नियमेष्वेका मुख्या वै चतुरानन। सिद्धं पद्मं तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम्। योग. तत्वो. (29)

13 प्रथमाभ्यासकाले तु विघ्नाः स्युश्चतुरानन। आलस्यं कत्थनं धूर्तगोष्ठी मन्त्रादिसाधनम्। याग. तत्वो. (30) धातुस्त्रीलौल्यकादीनि मृगतृष्णामयानि वै। ज्ञात्वा सुधीस्त्यजेत्सर्वान् विघ्नान्पुण्यप्रभावतः। योग. तत्वो. (31)

14 प्राणायामं ततः कुर्यात्पद्मासनगतः स्वयम्। सुशोभनं मठं कुर्यात्सूक्ष्मद्वारं तु निर्व्रणम्। योग. तत्वो. (32) सुश्ठु लिप्तं गोमयेन सुधया वा प्रयत्नतः। मत्कुणैर्मशकैर्लूतैर्वर्जितं च प्रयत्नतः। योग. तत्वो. (33) दिने दिने च संमृष्टं संमार्जन्या विशेषतः। वासितं च सुगन्धेन धूपितं गुग्गुलादिभिः। योग. तत्वो. (34) नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चौलाजिनकुशोत्तरम्। तत्रोपविश्य मेधावी पद्मासनसमन्वितः। योग. तत्वो. (35)

15 ऋजुकायः प्रान्जलिश्च प्रणमेदिष्टदेवताम्। ततो दक्षिणहस्तस्य अगुंष्ठेनैव पिङ्गलाम्। योग. तत्वो. (36) निरुध्य पूरयेद्वायुमिडया तु शनैः शनैः। यथाशक्त्यविरोधेन ततः कुर्याच् कुम्भकम्। योग. तत्वो. (37) पुनस्त्यजेत्पिङ्गलया शनैरेव न वेगतः। पुनः पिङ्गलयापूर्य पूरयेदुदरं शनैः। (38) धारयित्वा यथाशक्ति रेचयेदिडया शनैः। यया त्यजेत्तयापूर्य धारयेदविरोधतः। (39) जानु प्रदक्षिणीकृत्य न हुतं न विलम्बितम्। अङ्गुलिस्फोटनं कुर्यात्सा मात्रा परिगीयते। (40) इडया वायुमारोप्य शनैः षोडशमात्रया। कुम्भयेत्पूरितं पश्चाच्चतुःषष्ट्या तु मात्रया। (41) रेचयेत्पिङ्गलानाड्या द्वात्रिंशन्मात्रया पुनः। पुनः पिङ्गलयापूर्य पूर्ववत्सुसमाहितः। (42) प्रातर्मध्यंदिने सायमर्धरात्रे च कुम्भकान्। शनैरशीतिपर्यन्तं चतुर्वारं समभ्यसेत्। (43) एवं मासत्रयाभ्यासान्नाडीशुद्धिस्ततो भवेत्। यदा तु नाडीशुद्धिः स्यात्तदा चिह्नानि बाह्यतः। (44)

16 जायन्ते योगिनो देहे तानि वक्ष्याम्यशेषतः। शरीरलघुता दीप्तिर्जाठराग्निविवर्धनम् । (45) कृशत्वं च शरीरस्य तदा जायेत निश्चितम्। योगविघ्नकराहारं वर्जयेद्योगवित्तमः। (46) लवणं सर्शपं चाम्लमुष्णं रूक्षं च तीक्ष्णकम्। शाकजातं रामठादि वह्निस्वीपथसेवनम्। (47) प्रातः स्नानोपवासादिकायक्लेशांश्च वर्जयेत्। अभ्यासकाले प्रथमं शस्तं क्षीराज्यभोजनम्। (48) गोधूममुग्दुशाल्यन्नं योगवृद्धिकरं विदुः। ततः परं यथेष्टं तु षक्तः स्याद्वायुधारणे । (49)

17 न तस्य दुर्लभं किंचित्त्रिषु लोकेषु विद्यते। प्रस्वेदो जायते पूर्वं मर्दनं तेन कारयेत् । (51) ततोऽपि धारणाद्वायोः क्रमेणैव शनैः शनैः। कम्पो भवति देहस्य आसनस्थस्य देहिनः। (52) ततोऽधिकतराभ्यासाद्दार्दुरी स्वेन जायते। यथा च दर्दुरो भाव उत्प्लुत्योत्प्लुत्य गच्छति। (53) पद्मासनस्थितो योगी तथा गच्छति भूतले। ततोऽधिकतराभ्यासाद्भूमित्यागश्च जायते। (54) पद्मासनस्थ एवासौ भूमिमुत्सृज्य वर्तते। अतिमानुषचेष्टादि तथा सामर्थ्यमुद्भवेत्। (55)

18 न दर्शयेच्च सामर्थ्य दर्शनं वीर्यवत्तरम्। स्वल्पं वा बहुधा दुःखं योगी न व्यथते तदा। (56) अल्पमूत्रपुरीषश्च स्वल्पनिद्रश्च जायते। कीलवो दूषिका लाला स्वेददुर्गन्धताननें। (57) एतानि सर्वथा तस्य न जायन्ते ततः परम्। ततोऽधिकतराभ्यासाद्बलमुत्पद्यते बहु। (58) येन भूचरसिद्धिः स्याद्भूचराणां जये क्षमः । व्याघ्रो वा शरभो वापि गजो गवय एव वा। (59) सिंहो वा योगिना तेन मियन्ते हस्ततादिताः। कन्दर्पस्य यथा रूपं तथा स्यादपि योगिनः। (60) तद्रूपवशगा नार्यः काङ्क्षन्ते तस्य सङ्गमम्। यदि स करोत्येष तस्य विन्दुक्षयो भवेत्। (61) वर्जयित्वा स्त्रियाः कुर्यादभ्यासमादरात्। योगिनोऽङ्गे सुगन्ध जायते बिन्दुधारणात्। (62)

19 ततो रहस्युपाविष्टः प्रणवं प्लुतमात्रया। जपेत्पूर्वार्जितानां तु पापानां नाशहेतवे। (63) सर्वविघ्नहरो मन्त्रः प्रणवः सर्वदोषहा। एवमभ्यासयोगेन सिद्धिरारम्भसंभवा। (64)

20 ततो भवेद्वावस्था पवनाभ्यासतत्परा। प्राणोऽपानो मनो बुद्धिजीवात्मपरमात्मनोः। योग. तत्वो. (65) अन्योन्यस्याविरोधेन एकता घटते यदा। घटावस्थेति सा प्रोक्ता तच्चिह्नानि ब्रवीम्यहम्। योग. तत्वो. (66)

21 पूर्वं यः कथितोऽभ्यासश्चतुर्थांशं परिग्रहेत्। दिवा वा यदि वा साय याममात्रं समभ्यसेत्। योग. तत्वो. (67) एकवारं प्रतिदिनं कुर्यात्केवलकुम्भकम्। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो यत्प्रत्याहरणं स्फुटम्। योग. तत्वो. (68) योगी कुम्भकमास्थाय प्रत्याहारः स उच्यते । यद्यत्पश्यति चक्षुभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत्। योग. तत्वो. (69)

22 यद्यच्छृणोति कर्णाभ्यां तत्तदात्मेति भावयेत्। लभते नासया यद्यत्तत्तदात्मेति भावयेत्। योग. तत्वो. (70) जिह्वया यद्रसं ह्यत्ति तत्तदात्मेति भावयेत्। त्वचा यद्यत्स्पृशेद्योगी तत्तदात्मेति भावयेत्। योग. तत्वो. (71) एवं ज्ञानेन्द्रियाणां तु तत्तदात्मनि धारयेत्। याममात्रं प्रतिदिनं योगी यत्नादतन्द्रितः। योग. तत्वो. (72)

23 यथा वा चित्तसामर्थ्यं जायते योगिनो ध्रुवम्। दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः क्षणाद्दूरागमस्तथा। योग. तत्वो. (73) वाक्सिद्धिः कामरूपत्वमदृश्यकरणी तथा। मलमूत्रप्रलेपेन लोहादेः स्वर्णता भवेत्। योग. तत्वो. (74) खे गतिस्तस्य जायेत संतताभ्यासयोगतः। सदा बुद्धिमता भाव्यं योगिना योगसिद्धये। योग. तत्वो. (75) एते विघ्ना महासिद्धेनं रमेत्तेषु बुद्धिमान्न। न दर्शयेत्वसामर्थ्य यस्य कस्यापि योगिराट्। योग. तत्वो. (76) यथा मूढो यथा मूर्खो यथा बधिर एव वा। तथा वर्तेत लोकस्य स्वसामर्थ्यस्य गुप्तये। योग. तत्वो. (77) एवं भवेद्धटावस्था संतताभ्यासयोगतः। अनभ्यासवतश्चैव वृथागोश्ठ्या न सिद्धयति। योग. तत्वो. (80)

24 एवं च धारणाः पञ्च कुर्याद्योगी विचक्षणः। ततो दृढशरीरः स्यान्मृत्युस्तस्य न विद्यते। योग. तत्वो. (103)

25 ब्रह्मणः प्रलेयनापि न सीदति महामतिः। समभ्यसेत्तथा ध्यानं घटिकाषष्टिमेव च। वायुं निरुध्य चाकाशे देवतामिष्टदामिति। योग. तत्वो. (104) सगुणं ध्यानमेतत्स्यादणिमादिगुणप्रदम्। निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत्। योग. तत्वो. (105)

26 दिनद्वादशकेनैव समाधिं समवाप्नुयात्। वायुं निरुध्य मेधावी जीवन्मुक्तो भवत्ययम्। योग. तत्वो. (106) समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः। यदि स्वदेहमुत्स्त्रष्टुमिच्छा चेदुत्सृजेत्स्वयम्। योग. तत्वो. (107) परब्रह्मणि लीयेत न तस्योत्क्रान्तिरिष्यते। अथ नो चेत्समुत्स्त्रष्टुं स्वशरीरं प्रियं यदि। योग. तत्वो. (108) सर्वलोकेषु विहरन्नणिमादिगुणान्वितः । कदाचित्स्वेच्छया देवो भूत्वा स्वर्गे महीयते। (109)

27 तेन सर्वमिदं प्रोतं तत्सत्यं तत्परं पदम्। पुष्पमध्ये यथा गन्धः पयोमध्ये यथा घृतम्। योग. तत्वो. (136) तिलमध्ये यथा तैलं पाषाणेष्विव कांचनम्। हृदि स्थाने स्थितं पद्मं तस्य वक्त्रमधामुखम्। योग. तत्वो. (137) ऊर्ध्वनालमधोबिन्दुस्तस्य मध्ये स्थितं मनः। अकारे रेचितं पद्ममुकारेणैव भिद्यते। योग. तत्वो. (138) मकारे लभते नादमर्धमात्रा तु निश्चला। शुद्धस्फटिकसंकाशं निष्कलं पापनाशनम्। योग. तत्वो. (139)

28 लभते योगयुक्तात्मा पुरुषस्तत्परं पदम्। कूर्मः स्वपाणिपादादिशिरश्चात्मनि धारयेत्। योग. तत्वो. (140) एवं द्वारेषु सर्वेषु वायुपूरितरेचितः। निषिद्धं तु नवद्वारे ऊर्ध्वं प्रानिःश्वसस्तथा। योग. तत्वो. (141)घटमध्ये यथा दीपो निवातं कुम्भकं विदुः। निषिद्धैर्नवभिर्द्वारैर्निर्जने निरुपद्रवे। निश्चितं त्वात्ममात्रेणावशिष्टं योगसेवयेत्युपनिषत्। योग. तत्वो. (142)